ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 75-77
ISSN NO.- 2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.- 2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

श्रमण युगीन लोक धर्म

डॉ0 निर्मला गुप्ता

असिस्टेन्ट प्रोफेसर– प्राचीन इतिहास, जगत तारन गर्ल्स पी.जी. कालेज, प्रयागराज (उ0प्र0), भारत

Received-14.01.2024, Revised-26.01.2024, Accepted-31.01.2024 E-mail: nirmalagupta.bhu123@gmail.com

सारांश: श्रमण धार्मिक भिक्षु थे यह आध्यात्मिक उत्थान का प्रतिनिधित्व करने वाली श्रमण धारा पारम्परिक प्रवृत्तिमार्गी वैदिक धारा के विपरीत निवृत्तिमार्गी संन्यास प्रधान धारा है। ''आदितम श्रमण परम्परा आर्यों की ही थी, किन्तु ये आर्य वैदिक आर्यों के पूर्व भारत की ओर बढ़ने से पहले ही मगध विदेह में रहते थे, इसमें अब कोई सन्देह रहा नहीं प्रतीत होता।'' छठी श0 ई0 का काल श्रमण धारा के चरमोत्कर्ष का काल प्रतीत होता है। प्रमुख रूप से इसका नेतृत्व जैन एवं बौद्ध धर्मों ने किया। इनमें भी सुव्यवस्थित प्रचार के कारण बौद्ध धर्म दूर–दूर तक फैला, परन्तु इस परिवर्तन के कारण समाज में जो धार्मिक रीति–रिवाज पहले से चले आ रहे थे, वे विलुप्त नहीं हुए और न वैदिक एवं ब्राह्मण धर्मों की लोकप्रियता में कोई कमी आयी।

कुंजीभूत शब्द–श्रमण धार्मिक भिक्षु, आध्यात्मिक उत्थान, प्रतिनिधित्व, प्रवृत्तिमार्गी, वैदिक धारा, निवृत्तिमार्गी, आदितम श्रमण परम्परा।

''समाज में श्रमण–संस्था बौद्ध धर्म से पहले विद्यमान थी।''[1] इस प्रसंग में ध्यातव्य है कि 'श्रमण शब्द का प्रथम प्रयोग वृहदारण्यक उपनिषद में किया गया है :–

''अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोकाऽलोकादेवा–अदवो वेदा अवेदा अब स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूवहादृचाण्डालोऽचाण्डालाः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापदृसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाच्छोकान्हृदयस्य भवति।।''[2]

अतः स्पष्ट है कि श्रमण धार्मिक भिक्षु थे। पालिग्रन्थों में श्रमण शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है, विशेषतः समण–ब्राह्मण। यह पद उस समय के धार्मिक जगत का पूरा चित्र खींचता है। बुद्ध को प्रायः समण गोतम कहा गया है। प्रो0 मुकर्जी के अनुसार–''यह शब्द साधारण भिक्खुं या मांगने वाले का वाचक बन गया। उसी से निकले हुए 'सामणेर'शब्द का अर्थ था–नौसिखिया भिक्खु। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में पहले जिस श्रमण का उल्लेख है, वह सच्ची त्याग वृत्ति में कहीं अधिक बढ़ा हुआ था......वह दर–दर भीख मांगने वाला और भिक्षा से पेट पालने वाला भिखारी न था। वह वन के कन्दमूल खाकर बस्ती से दूर रहता था और उसके लिए ग्राम–प्रवेश निषिद्ध था।''[3]

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि आध्यात्मिक उत्थान का प्रतिनिधित्व करने वाली श्रमण धारा पारम्परिक प्रवृत्तिमार्गी वैदिक धारा के विपरीत निवृत्तिमार्गी संन्यास प्रधान धारा है। इस धारा का नेतृत्व समय–समय पर विभिन्न धर्माचार्यों, चिन्तकों, संन्यासियों, परिव्राजकों, भिक्षुओं परिव्राजकों, भिक्षुओं, तार्किकों, मीमांसकों, श्रमणों ब्राह्मणों धर्मप्रचारकों आदि ने किया। प्रसिद्ध विद्वान डा0 गैरोला जैन धर्म को श्रमण संस्कृति का प्रवर्तक मानते हैं और उसका अस्तित्व प्रागैतिहासिक बताते हैं : ''श्रमण संस्कृति के प्रवर्तक जैन धर्म का अस्तित्व सम्भवतः प्रागैतिहासिक है। वैदिक युग में उसने व्रात्यों और श्रमण ज्ञानियों का प्रतिनिधित्व किया।''[4]

साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर प्रसिद्ध जैन विद्वान डा0 हीरा लाल जैन का मत है कि जैन धर्म की प्राचीनता ऋग्वैदिक कालीन है। ऋग्वेद को वे 1500 ई0पू0 की कृति मानते हैं। उनका निष्कर्ष है कि ''इस प्रकार श्रमण साधनाओं की परम्परा हमें नाना प्रकार के स्पष्ट व अस्पष्ट उल्लेखों द्वारा ऋग्वेद आदि समस्त वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होती है।''[5]

पुरातात्विक साक्ष्यों के अस्पष्ट एवं मतभेद युक्त समीकरण के आधार पर श्री एम.एल. मेहता जैसे विद्वान जैन धर्म को सैन्धव कालीन (3000 बी.सी.) प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं।

श्रमण धर्म एवं श्रमण कालीन धार्मिक स्थिति का अनुशीलन करने पर यह सत्य भी उजागर हो जाता है कि तत्कालीन धार्मिक वातारण क्रान्तिकारी एवं सहिष्णुता से ओत–प्रोत था। बुद्धकालीन समाज और धर्म के प्रख्यात विद्वान डा0 मदन मोहन सिंह का निम्नलिखित कथन अत्यन्त समीचीन है : ''यद्यपि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में सैद्धान्तिक मतभेद थे, पर सभी सम्प्रदाय के गृहत्यागियों की जीवन पद्धति में पर्याप्त साम्य बना रहा, क्योंकि सभी का उद्गम एक था।''[6]

एक अन्य प्रसंग में इस बात की पुष्टि करते हुए –डा0 जैन लिखते हैं : ''आदितम श्रमण परम्परा आर्यों की ही थी, किन्तु ये आर्य वैदिक आर्यों के पूर्व भारत की ओर बढ़ने से पहले ही मगध विदेह में रहते थे, इसमें अब कोई सन्देह रहा नहीं प्रतीत होता।''[7]

छठी श0 ई0 का काल श्रमण धारा के चरमोत्कर्ष का काल प्रतीत होता है। प्रमुख रूप से इसका नेतृत्व जैन एवं बौद्ध धर्मों ने किया। इनमें भी सुव्यवस्थित प्रचार के कारण बौद्ध धर्म दूर–दूर तक फैला, परन्तु इस परिवर्तन के कारण समाज में जो धार्मिक रीति–रिवाज पहले से चले आ रहे थे, वे विलुप्त नहीं हुए और न वैदिक एवं ब्राह्मण धर्मों की लोकप्रियता में कोई कमी आयी। जनता को विभिन्न धर्मसम्प्रदायों के सैद्धान्तिक विवादों से कोई मतलब नहीं था। युगों से प्रचलित धार्मिक परम्पराओं पर जनसाधारण की जो अटल आस्था थी, उसे तोड़ना सम्भव नहीं था। यह जनता का सनातन धर्म था, लोक धर्म था।

श्रमण कालीन लोकधर्म की जीवन्तता एवं उसके स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए डा0 पाण्डेय लिखते हैं –

''इस प्रकार जैन और बौद्ध धर्म ग्रन्थों में वर्णित धार्मिक मान्यताओं से प्रकट होता है कि साधारण जनता पर बौद्धिक क्रान्ति का प्रभाव न पड़ा था। यह क्रान्ति कदाचित समाज के उच्च एवं शिक्षित वर्ग को ही अधिक प्रभावित कर पायी थी। गाँवों में रहने वाला परम्परानुगामी भारतीय बहुत कुछ उसके प्रति उदासीन ही रहा। वह अपने पुरातन बहुदेववाद, यज्ञवाद, रूढ़िवाद और अन्धविश्वास को सहसा छोड़ देने के लिए प्रस्तुत न था। प्रारम्भ में नवीन धर्मों ने उसके इस पुरातनवाद का विरोध किया और उसे आमूल नष्ट कर देने का प्रबल प्रयास किया परन्तु उसे अधिक सफलता न मिली। अन्त में लोकप्रिय होने के कारण इन धर्मों ने शनैःशनैः लोकधर्मों की उन

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

अनेकानेक पद्धतियों और प्रणालियों को अपना लिया जिसका प्रारम्भ में उन्होंने विरोध किया था।[8]

लोकधर्म की लोकप्रियता और स्वीकार्यता को महात्मा बुद्ध जैसे पुरोधा ने भी चुनौती देने का कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया, वरन् जैसा कि डा0 सिंह लिखते हैं : ''इस तथ्य को भगवान बुद्ध ने स्वीकार किया, अतएव उन्होंने समाज में मान्य रीति–रिवाजों का कोई विरोध नहीं किया।.....

वस्तुतः बौद्ध धर्म आरम्भ में अधिकांशतः ब्राह्मण धर्म का ही ऐसा रूपान्तर था, जिसमें हिंसक कर्मों को दूर करने की चेष्टा की गई थी।''[9]

''बौद्ध–भिक्षु तथा जैन–श्रमण अधिकतर उन्हीं नियमों का पालन करते थे जिनका विधान उनके विरोधी तापस–ब्राह्मणों ने बहुत पहले किया था। जैन श्रमणों तथा ब्राह्मण–तापसों के आचार सम्बन्धी नियमों में अधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है।''[10]

महात्मा बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म के हिंसक आचरणों के विरोधी होने के कारण पशुयज्ञ की निन्दा की पर उस यज्ञ का जिसमें प्राणि–हिंसा होती थी, उन्होंने समर्थन किया। लोक धर्म की मान्यता और धर्म के क्षेत्र में व्याप्त सहिष्णुता का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है?

पाकयज्ञों तथा पंचमहायज्ञों के विषय में वे मौन रहे। स्वप्नों के फलाफल पर जनता का बड़ा विश्वास था। जनता की इस आस्था का विरोध बुद्ध न कर सके। इस विषय में उनके अनुयायी कहने लगे कि ब्राह्मणों की तुलना में भगवान बुद्ध अधिक प्रामाणिक स्वप्न विचार में समर्थ है।

जनता पुरोहित से मंगलपाठ करवाती थी, अतः बौद्ध धर्म में मंगल सुत्त के पाठ का विधान किया गया। जैन धर्म में अष्टमंगल की व्यवस्था की गयी। वह बौद्ध जैन और ब्राह्मण धर्म में व्याप्त सहिष्णुता का उत्कृष्ट दृष्टान्त है। अतः स्पष्ट है कि

''वस्तुतः लोकप्रिय ब्राह्मण धर्म ही उस युग का लोकधर्म था। अथर्ववेद में मंत्र–तंत्र, जादू टोना भूतापसरण, अभिचार, गुप्त क्रियाएँ, स्वप्न विचार लक्षण–विचार पशु–पक्षी–क्रन्दन–विचार इत्यादि विश्वासों को मान्यता दी गई है।[11]

अथर्ववेद में उन धार्मिक आस्थाओं तथा आचरणों को मान्यता प्रदान की गई है। जो अवैदिक भी थे। इसे भारतीय धर्म में निहित सहिष्णु प्रवृत्ति का ही परिचायक मानना चाहिए। इस दृष्टि से हापकिन्स की यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो जाती है कि वैदिक या ब्राह्मण धर्म का आचरण भारतीय समाज के अल्पवर्ग ने किया। इसके विपरीतडा0 सिंह की यह मान्यता सत्य है कि सामान्य ब्राह्मण धर्म ही व्यापक होकर लोकधर्म बन गया। उन्हीं के शब्दों में : ''हिन्दू समाज में आरम्भ से ही धर्म के दो रूप हुए–विशिष्ट तथा सामान्य और सामान्य ब्राह्मण धर्म ही व्यापक होने से लोक धर्म बन गया।''[12]

लोक धर्म के प्रमुख अंगों में जातकों द्वारा वर्णित कुरू धर्म तथा दश–राजधर्म, मनु द्वारा निर्दिष्ट दस–धर्म, जैनों के पंच महाव्रत तथा बौद्धों के दश–शील की गणना की जाती है। वास्तव में ये सभी ब्राह्मण संन्यासियों द्वारा प्रतिपादित एवं मान्य आचार संहिताओं से लिए गए, अतः तीनों में इतना साम्य दृष्टिगोचर होता है।

श्रमण कालीन लोकधर्म के अन्तर्गत सामाजिक जीवन में लोकप्रिय लोक–महोत्सवों का भी उल्लेख किया जाना समीचीन है। वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र बौद्ध एवं जैन साहित्य इत्यादि में लोक–उत्सवों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। अशोक के अभिलेख समाज नामक उत्सव का उल्लेख करते हैं। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख के अनुसार उसने अपने सफल विजय अभियान के उपलक्ष्य में कलिंग वासियों के रंजनार्थ एक महोत्सव का आयोजन किया जिसमें मल्लयुद्ध, वादन, गायन तथा नृत्यादि के प्रदर्शन किए गए। जैन सूत्रों से पता चलता है कि श्रमण–मौर्यकाल में लोग इन्द्र–स्कन्द, रुद्र, मुकुन्द, यक्ष, नाग, स्तूप, मन्दिरों वृक्षों नदीं सरोवरों भूतों, विद्याधरों इत्यादि की पूजा करते थे। धनुर्वेद, हस्ति–व्यायाम, घुड़दौड़, नाटक, संगीत प्रतियोगिताएँ जनता के मनोरंजन के साधन थे। इसके अतिरिक्त–कौमुदी महोत्सव, साल–भञ्जिका, सुरानक्षत्र, हस्तिमंगलों कर्षणोत्सव जैसे विशिष्ट सामाजिक उत्सवों का भी आयोजन किया जाता था।

अतः स्पष्ट है कि श्रमण मौर्यकाल में समाज में बड़ी धूमधाम से धार्मिक एवं लौकिक उत्सव मनाए जाते थे। इस तथ्य की पुष्टि बौद्धपिटकों एवं जैन सूत्रों से भी होती है। धार्मिक एवं लौकिक उत्सव श्रमण–मौर्य कालीन समाज के धर्मनिरपेक्ष एवं सहिष्णु चरित्र का परिचय कराते हैं।

श्रमण मौर्य युगीन लोकधर्म के विवरण के पश्चात् शैव–शाक्त, वैष्णव एवं वैदिक धर्मों की स्थिति एवं उनमें व्याप्त सहिष्णुता के आदर्शों पर विचार किया जाएगा। साथ ही साथ यह देखना भी अत्यन्त रूचिपूर्ण होगा कि ब्राह्मण धर्म की प्रतिक्रिया में उद्भूत आजीवक जैन और बौद्ध धर्मों में अब भी समानता एवं पारस्परिक सहिष्णुता के प्रबल तत्व विद्यमान हैं।

श्रमण–नन्द मौर्य युगीन धार्मिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए डा0 मदन मोहन सिंह का कथन है कि : ''आर्यों के अभ्युदय के पूर्व जो धार्मिक तथा सामाजिक प्रथाएं देश के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित थीं, उनमें समुचित परिवर्तन कर वैदिक आर्यों ने उनका नवीनीकरण कर दिया और विभिन्न धार्मिक आचार–विचारों का समन्वय करके उन्होंने पूर्ण सफलता के साथ अनेकत्व में एकत्व की स्थापना की। ऋग्वैदिक काल में आर्यों ने जिस धार्मिक समन्वय की प्रक्रिया का सूत्रपात किया वह पूर्ण हुआ–उत्तर वैदिक काल में।''13

तदन्तर दार्शनिक चिन्तन का वह युग आया जिसे उपनिषद काल कहा जाता है। यह ब्रह्मज्ञान की वैदिक कर्मकाण्ड पर विजय का काल था। इसके बाद बुद्ध काल, श्रमणधारा के प्राधान्य का काल आया। इस युग के धर्म प्रवर्तकों में प्रमुख थे–गौतम बुद्ध, महावीर और मक्खलि गोसाल। इन तीनों में नैसर्गिक प्रतिस्पर्धा थी। इनके अनुयायी प्रायः झगड़ा कर बैठते थे। इन्होंने क्रमशः बौद्ध, जैन और आजीविक मतों की स्थापना की। आवान्तर कालों में आजीविक जैन–अवैदिक धारा में विलीन हो गये। बौद्ध और जैन धर्मों ने आगामी कालों में सांस्कृतिक धार्मिक क्षेत्र में अपनी अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह किया। एक धार्मिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसका

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

नेतृत्व श्रमण–भिक्षुओं ने किया।

भारतवर्ष में ईसापूर्व छठी शताब्दी में ऐसी ही एक महान क्रान्ति हुई थी। यह क्रान्ति राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक थी। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक और स्वरूप विविध था। इस समय अन्यान्य धार्मिक मतों तथा सम्प्रदायों ने जन्म लेकर भारतवर्ष की पुरातन धर्मसहिष्णु परम्परा को और अधिक पुष्ट किया। बौद्ध ग्रन्थों की मान्यता के अनुसार छठी शताब्दी ईसा पूर्व में गंगा घाटी के क्षेत्र में छोटे बड़े बासठ (62) धार्मिक मतों का उदय हुआ। जैन ग्रन्थों के अनुसार इस समय तीन सौ तिरसठ (363) सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इस नवीन क्रान्ति का क्षेत्र प्रायः पूर्वी भारत ही था। आगे चलकर इसने पूरे विश्व को प्रभावित किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुकर्जी, प्रो0 राधा कुमुद,: हिन्दू सभ्यता अनु0 (दिल्ली) 1958: पृ0, 268.
2. वृहदारण्यक उपनिषदः 4–3/22.
3. मुकर्जी, डा0 राधा कुमुद, : हिन्दू सभ्यताः पृष्ठ–268.
4. डा0 वाचस्पति गैरोला : भारतीय संस्कृति और कला–उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ प्रथम संस्करण–1973 ई0 पृष्ठ–252.
5. जैन, डा0 हीरालाल, : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदानः मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद् भोपालॉ 1975, पृष्ठ–19.
6. सिंह, डा0 मदन मोहन,: बुद्ध कालीन समाज और धर्मः बिहार–हिन्दी ग्रंथ अकादमी, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ–9–10.
7. जैन, डा0 हीरालाल, : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान–पृष्ठ–33.
8. पाण्डेय, डा0 वी.सी., : प्राचीन भारत का रा0 तथा सां0 इतिहास, भाग–1 सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबादः पृ0 270.
9. सिंह, डा0 मदन मोहन, : बुद्धकालीन समाज और धर्मः पृष्ठ–22.
10. वहीः पृष्ठ – 122–123.
11. वहीः पृष्ठ – 123.
12. वहीः पृष्ठ – 124.
13. सिंह, डा0 मदन मोहन, : बुद्धकालीन समाज और धर्मः पृष्ठ–97.

*****